समयसार ग्यारहवीं गाथा का भावार्थ। यहाँ तक आया है, `शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं' क्या कहा ? व्यवहार है यह सभी असत्यार्थ है अर्थात कि आश्रय करने लायक नहीं, भले भगवान की आज्ञा से व्यवहार आया कोई जानने (लायक) परंतु यह सभी जानने योग्य है, आदरने योग्य नहीं।

श्रोता :- मात्र जानने योग्य है कि हेय है ?

उत्तर :- जानने योग्य का अर्थ ही हुआ कि हेय है।

यह तो आदर करने लायक है यह। चैतन्य ज्ञायक स्वरूप शुद्ध चैतन्य आनंद मंदिर, चैतन्यघन, यही आश्रय करने योग्य (है)। आदर करने योग्य, उपादेयरूप यह एक ही चीज है। तब इसे आनंद और शांति आये, साम्यभाव, पूरे जैनदर्शन का तात्पर्य तो साम्य, वीतरागभाव है। प्रवीणभाई आये लगता है ! ग्यारहवीं गाथा उसका भावार्थ उसमें आखरी है।

श्रोता :- भावार्थ शुरु से लो तो क्या तकलीफ है ?

उत्तर :- भावार्थ शुरु से ? भावार्थ :- `**यहाँ व्यवहार नय को**' अर्थात कि जो आत्मा में गुण-गुणी भेद, पर्याय, राग, उसे जो विषय बनाये उसे व्यवहार नय कहते है। सूक्ष्म बात है भाई ! आहाहा ! जो नय अर्थात ज्ञान का अंश, नय अर्थात ज्ञान का अंश यह गुण-गुणी के भेद को विषय बनाये, गुणी आत्मा और ज्ञानादि गुण ऐसे भेद को विषय बनाये, और पर्याय को विषय बनाये और दया-दान आदि विकल्पों को विषय बनाये यह नय अर्थात ज्ञान के अंश को व्यवहार नय कहा जाता है। अकेले सिद्धांत है। आहाहा !

यह व्यवहार नय अभूतार्थ है, यहाँ झूठा कहा है। है तो अवश्य, पर्याय है,

गुणभेद है, दया-दान के विकल्प भी हैं, परंतु अभूतार्थ असत्यार्थ कहा। क्योंकि उनका आश्रय करने लायक नहीं। आहाहाहा ! उसका आश्रय करने लायक नहीं, गुण भेद का, पर्याय का और राग का, इसलिये उसे असत्यार्थ कहकर गौण करके `नहीं' आश्रय करने लायक नहीं इसलिये `नहीं' - ऐसा कहा है। आहाहाहा !

`शुद्धनय को भूतार्थ कहा है' त्रिकाली वस्तु जो आनंदकंद प्रभु ! उसे जो ज्ञान का अंश जाने-देखे, उसे (भूतार्थ कहा) क्योंकि यह सत्यार्थ त्रिकाली आत्मा है। यह ध्रुव को देखे उसे... शुद्धनय कहते हैं, और यह शुद्धनय भूतार्थ है। क्योंकि यह त्रिकाली को विषय करता है। अरे...! - ऐसा है, धरम का स्वरूप जगत को बहुत कठिन लगे ! है ?

अब, कहते हैं कि अभूतार्थ और भूतार्थ कहा, अब इसका आशय क्या है ? उसकी स्थिति क्या ?

`जिसका विषय विद्यमान न हों' आहाहा ! जिसका ध्येय जो है वह विद्यमान न हो, असत्यार्थ हो - झूठा हो उसे अभूतार्थ कहते हैं। यह व्यवहारनय के अभूतार्थपने की परिभाषा हुई। आहाहाहाहा ! कठिन। नये व्यक्तियों को अभ्यास नहीं, मूल वस्तु का अभ्यास नहीं।

भगवान पूर्णानंदप्रभु ! एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं, उसको विषय बनाना, उसे ध्येय बनाना यह शुद्धनय का विषय है। यह सम्यग्दर्शन का विषय कहो, शुद्धनय का विषय कहो, कि उसका विषय सामान्य है उसे शुद्धनय कहो। आहाहा !

(जिसका) विषय विद्यमान न हो उसे असत्यार्थ कहते हैं। `व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय - ऐसा है कि शुद्धनय का विषय अभेद एकाकार नित्य द्रव्य है' आहाहा ! सम्यग्ज्ञान जो सत्य शुद्ध अंश, नय है वह अंश है यह त्रिकाली ध्रुव को विषय बनाता है। व्यवहार है वह वर्तमान पर्याय को भेद को विषय बनाता है।

और यह शुद्ध सम्यग्ज्ञान का जो एक अंश प्रमाण का, प्रमाण तो द्रव्य को भेद और अभेद दोनों को, जानता है इस प्रमाण में उसका जो नय-भाग, एक अंश है, और वह अंश भी त्रिकाली को जाने वह अंश है, उसे यहाँ शुद्धनय कहते हैं। आहा ! यह सभी आ गया है अपना परंतु यह तो थोड़ा फिर से...

`उसका विषय अभेद' आहा ! चैतन्य ब्रह्म भगवान पूर्णानंद प्रभु अभेद सामान्य जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं और जिसमें पर्याय वर्तमान विद्यमान है वह भी जिसका विषय नहीं। आहाहा ! शुद्धनय का विषय अभेद चैतन्यस्वरूप एकरूप एकाकार, अनेक नहीं, एक स्वरूप भगवान जो शुद्ध चिदानंद प्रभु है, वह नित्य द्रव्य है। (श्रोता :- यह तो शुद्धनय है ?) हो, वह एक नय वह नित्यद्रव्य है। ***शुद्धनय का विषय, वह***

त्रिकाली नित्य द्रव्य है। सम्यग्दर्शन का विषय भी यह त्रिकाली द्रव्य है। आहाहा ! धरम का पहली शुरुआत होने पर सम्यग्दर्शन जो शुरुआत उसका विषय नित्य द्रव्य एकाकार अभेद है। यह शुद्धनय का विषय कहो कि सम्यग्दर्शन का विषय कहो। यहाँ जानने की अपेक्षा लिया है, इसलिए नय लिया है। और प्रतीति में जानना नहीं वहाँ अभेद एकाकार नित्य द्रव्य की प्रतीति करता है। अरे...! ऐसी बातें परंतु यह प्रतीति है यह जानती नहीं। इसलिये यहाँ जानने की अपेक्षा से जो ज्ञान का सम्यक् निश्चय अंश, अभेद एकाकार नित्य द्रव्य को जो विषय करता है, उसे यहाँ शुद्धनय कहा जाता है। आहाहा !

उसकी दृष्टि में, किसकी दृष्टि में ? जिस शुद्धनय का विषय अभेद एकाकार नित्यद्रव्य है, उसके विषय में अभेद को एकाकार को नित्यद्रव्य को देखने की दृष्टि में भेद दिखता नहीं। अरे !... उसकी दृष्टि में - ऐसा कहा न ? जो वस्तु त्रिकाल ज्ञायक चिदानंद प्रभु ध्रुव है वह सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्ज्ञान अर्थात यह निश्चय सम्यग्ज्ञान, व्यवहार भी सम्यग्ज्ञान है परंतु उसका विषय भेद और (व्यवहार) नय है। आहाहा !

यहाँ जो त्रिकाली जो वस्तु है, ध्रुव है, भेद और पर्याय के आश्रय बिना की है एक नित्य त्रिकाली प्रभु यह शुद्धनय का ध्येय विषय होने से, शुद्धनय वह अभेद को देखता जानता है, इसलिये उसकी दृष्टिमें, अभेद को देखनेवाले शुद्धनय की दृष्टि में, भेद नहीं दिखता।

(श्रोता :- इसमें कुछ समझ में नहीं आया) फिर से कहते हैं, इसमें कहाँ अपने को (जल्दी) है ? आहाहा ! वस्तु है अखण्ड एकरूप आत्मा उसे देखनेवाले को भेद दिखता नहीं, क्योंकि अभेद ऊपर दृष्टि है, ***सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाली अभेद है। इस अभेद सामान्य नित्यद्रव्य को, जो नय अथवा दृष्टि देखती है उसमें भेद दिखता नहीं, अभेद देखनेवाले को भेद कहाँ दिखता ? भेद है नहीं इसमें। आहाहा ! (श्रोता :- त्रिकाली में भेद नही ?) त्रिकाली एकरूप में गुणभेद है, परंतु अभेद की दृष्टि में यह गुणभेद दिखता नहीं।*** आहाहा ! ऐसी बातें बापू ! बहुत सुक्ष्म। वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म।

किसी दिन सुना नहीं भाई और यह बाहर के गोरखधंधे में, या तो इस जगत की सेवा करना और अमुक करना और मर गया वहाँ कौन सेवा करता था ? पर की सेवा कर सकता हूँ - ऐसा माननेवाले आत्मा को मार डालते हैं, आत्मा का इसने खून किया है। क्योंकि आत्मा ज्ञान और आनंद स्वरूप है यह तो जानने-देखनेवाला है, उसे पर का करना है यह उसे सोंपा तव (वह) उसका स्वभाव नहीं,

उसका अनादर किया है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं - व्यवहार अभूतार्थ असत्यार्थ कहा और निश्चय शुद्धनय को सच्चा और सत्यार्थ कहा एवं भूतार्थ कहा। इसका आशय क्या ? कि इसका आशय यह कि जिसका विषय नहीं असत्यार्थ है उसे व्यवहारनय कहते हैं। तब कहते हैं कि व्यवहारनय का विषय क्यों नहीं ? निश्चय में अभेद को देखनेवाले को इसमें भेद दिखता नहीं, इसलिये उसमें भेद नहीं। आहाहा ! वीतराग का मार्ग के लौजिक न्याय बहुत अलौकिक है। आहाहा !

अभी तो सुनना मुश्किल हो गया है। आहाहा..! - ऐसा स्वभाव। भगवान परमानंद प्रभु। वीतरागमूर्ति आत्मा त्रिकाल ! उसकी दृष्टि करने पर, अभेद को और एकाकार को वह देखता है, इसलिये उस अभेद में भेद दिखता नहीं। इसलिये इस अपेक्षा से व्यवहार को झूठा कहा है। अभेद में भेद दिखता नहीं इसलिये भेद का लक्ष्य करनेवाले को झूठा कहा है।

अरे ! अरे ! आहाहा ! - ऐसा मार्ग, यह दया पालना, व्रत करना, अभिमान... दान करना लाखों करोड़ों का- ऐसा कहें तो समझ में अवश्य आये, कुछ ? कर सकते हैं-इसने - ऐसा माना है। आहाहा..! (श्रोता :- कर कब सकता है ?) कर कब सकता था (श्रोता :- पर का कौन कर सकता है ?) यह प्रभु तो ज्ञान स्वरूप है न ! इसमें तो पर्याय एक अवस्था, वर्तमान चलती है हलचल गतिवाली, इसका भी, पर्याय का भी जिसमें अभाव है... आहाहा ! ***जो पर्याय इसको विषय करती है उस पर्याय का भी इसमें अभाव है। आहाहा ! क्या कहते हैं यह जो शुद्ध नय ज्ञान का अंश है अथवा सम्यग्दर्शन जो सच्ची प्रतीति (रूप) अंश है, उसका विषय यह त्रिकाली ध्रुव है अभेद इस तरह विषय होने पर भी, वह पर्याय इसमें नहीं। पर्याय पर्याय में है एवं अभेद अभेद में है।*** आहाहा ! समझ में आये इतना समझना बापू ! यह तो वीतराग का मार्ग कोई अलौकिक है। दुनियाँ में कहीं है नहीं यह। आहाहा !

और इसकी शरण बिना यह जन्म-मरण नहीं छूट सकता प्रभु ! आहाहा ! यह चौराशी लाख की योनि, अजान योनियों में जाकर जन्मे, मरे बापू ! आहाहा ! अरे..रे ! यह दुःख के समुद्र में गिरे, और उस दुःख की बात क्या करना ? जिस नर्क के क्षण (मात्र) के दुःख... भगवान - ऐसा कहते हैं... नर्क के क्षण के दुःख करोड़ों जीभों एवं करोड़ों भवो तक नहीं कहे जा सकते - ऐसा यह नर्क में क्षण (भर) का दुःख है। - ऐसा - ऐसा तो तेतीस सागर तक भोगा। - ऐसा एक बार नहीं परंतु अनंतबार तेतीससागर गया। आहा ! बापू ! तुम्हारे दुःखों को देखकर, देखनेवालों

को आंसु आये हैं भाई ! तुम अभी बाहर में, राजी-खुशी होकर रुके हो, बापू तुम्हारा रास्ता कहाँ से आयेगा नाथ ! आहा...हा !

यहाँ तो एक समय की पर्याय और गुण-गुणी का भेद और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, उसे जो जाने वह व्यवहारनय और यह व्यवहारनय का विषय और उसे यहाँ झूठा कहा। झूठा क्यों कहा ? कि अभेद दृष्टि में यह दिखता नहीं इसलिये उसकी विद्यमानता बाहर में होने पर भी अभेद में विद्यमान दिखता नहीं, इसलिये झूठा कहा। आहाहाहाहा ! इसलिये उसकी दृष्टि में - ऐसा है न ? किसकी दृष्टि में ? कि जो ज्ञायक स्वरूप त्रिकाल है, उसे जो देखनेवाला शुद्धनय सम्यग्ज्ञान का अंश है यह अभेद एकाकार नित्य को देखता है, उसकी दृष्टि में भेद दिखता नहीं। आहाहाहाहा !

ऐसा उपदेश किस जाति का यह ? हाँ ? यह तो वीतराग का मार्ग - ऐसा होगा अरे बापू ! भाई ! तुम्हें खबर नहीं। आहा..हा..! यह साम्यभाव यह वीतरागभाव है और यह साम्यभाव चारों अनुयोगों का सार है और यह साम्यभाव, कैसे प्रगट हो ? कि साम्यभाव के संपूर्ण स्वभाव से भरा हुआ भगवान है। इसका आश्रय करने से साम्यभाव आता है, और इस साम्यभाव की दृष्टि से जब, त्रिकाल को देखते है तब वह अभेद है। शुद्धनय से कहो, कि वीतरागभाव से कहो। आहाहाहा !

व्यवहार को झूठा और असत्य कहा इसका कारण क्या ? आशय क्या ? कि, निश्चय जो सत्यज्ञान है एवं जो दृष्टि है यह त्रिकाल एवं अभेद ऊपर पड़ी है तथा अभेद को देखती है अतः उसमें भेद दिखता नहीं। इसलिये उस भेद को अविद्यमान, असत्य कहकर व्यवहारनय का विषय असत् है। इसलिए व्यवहारनय असत् है। आहाहाहा ! उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, असत्यार्थ ... कहना चाहिए। है ? आहा !

इसमें तो घर पर स्वयं से कुछ सुने तो समझ में आये नहीं, यह क्या लिखा है परंतु यह ? बापू यह तो मंत्र है, बापा ! भाई ! यह तो चैतन्य आनंद का नाथ, आनंद मंदिर चैतन्यरत्नाकर स्वरूप भगवान, अनंतगुणों का सागर अपरिमित शक्तियों का संग्रहालय- ऐसा जो भगवान आत्मा उसकी दृष्टि से देखने पर इसमें भेद नहीं दिखता, इसलिये उस भेद को विषय बनानेवाला नय, इसे झूठ कहा है। आहाहाहा ! शशिभाई ! - ऐसा है।

ऐसा नहीं समझना कि भेदरूप कुछ वस्तु ही नहीं। अब - ऐसा कहते हैं कि अभेद में भेद दिखता नहीं, इसलिये भेद को झूठा कहा, परंतु भेद (रूप) कुछ वस्तु है ही नहीं, पर्याय है ही नहीं, गुणी में गुणों के अनंतप्रकार है ही नहीं, दया, दान का रागरूप विकल्प ज्ञानी को भी आये बिना रहता नहीं, यह `नहीं' - ऐसा नहीं।

समझ में आया ?

ऐसा न समझना कि भेदरूप कुछ वस्तु ही नहीं। यदि - ऐसा माननेमें आये तो तो जैसे वेदांतमतवाले... वेदांतमतवाले सर्व व्यापक एक आत्माको कहते हैं यह भेद रूप पर्याय को और भेदरूप वर्तमान अवस्थाको अनित्य को देखकर... है ? यह अवस्तु माया स्वरूप कहते हैं। यह वस्तु नहीं माया, या...मा वह नहीं यह वह...नहीं - ऐसा वेदांतवाले कहते हैं। आहाहा ! माया है यह तो अर्थात् कि यह नहीं। या मा यह....नहीं। - ऐसा वेदांतवाले, पर्यायका तथा अनंतगुणों के भेद को और रागादिक को और अनेक द्रव्य को `नहीं' कहनेवाले... यदि भेद और व्यवहार नय नहीं। तब तो फिर यह वस्तु ही नहीं, तव वेदांत मत हो गया। आहाहा !

आहा..! यहाँ तो भेद को झूठा कहने का आशय, अभेद की दृष्टि में भेद दिखता नहीं, अतः झूठा कहा है। परंतु व्यवहार अपेक्षा व्यवहार का विषय है उसका, निषेध नहीं। आहाहाहा ! ***और व्यवहार का व्यवहार से विषय है, उसकी श्रद्धा भी करना चाहिए। परंतु यह श्रद्धा छोड़ने लायक है। `है' इस अपेक्षा श्रद्धा करने लायक है। परंतु यह श्रद्धा छोड़ने लायक है।*** आहाहा ! और त्रिकाली भगवान जो आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का सागर एकरूप साम्यभाव से रहनेवाला प्रभु, उसे देखनेवाले को भेद दिखता नहीं, अतः व्यवहार और भेद को पर्याय को झूठा कहा, (है) परंतु इससे यह नहीं समझना कि गुण भेद और पर्याय और दूसरे अनेक द्रव्य आदि `नहीं' - ऐसा नहीं समझना, भाई ! आहाहाहा !

अलौकिक बात है बापा ! यह करोड़ों अरबों रुपया दे तो मिले - ऐसा नहीं,। यह चीज ऐसी है। आहाहा ! अमृतसागर अंदर से उछला है अंदर से। उसकी यह सभी बात हैं। आहाहा !

जहाँ अमृतसागर से भरा हुआ भगवान ! अमृत अर्थात अतीन्द्रिय आनंद का अमृतपना। इससे प्रभु तुम भरचक लबालब भरा है एकरूप स्वरूप... आहाहा ! उसकी जहाँ, दृष्टि हुई और जिसने इसे विषय बनाया, इस विषय में तो भेद है नहीं। इसलिये व्यवहार को झूठा - इस अपेक्षा कहा है। परंतु बिलकुल व्यवहार नहीं ही - ऐसा माने तब वेदांतमतवालों जैसा अज्ञान होकर मिथ्यात्व होगा। आहाहा !

है ? अवस्तु माया स्वरूप कहते हैं और सर्वव्यापक... वस्तु अपेक्षा एक गुणों से अभेद। यह लोग क्या कहते हैं ? कि वस्तु अपेक्षा एक और अभेद इसमें गुणों का भेद भी नहीं यह तो अभेद है। नित्य, पर्याय नहीं यह तो नित्य ही है। एक, अभेद नित्य तीन का यह अर्थ यह हुआ। कि वस्तु एक, गुणभेद नहीं, पर्याय नहीं। समझ में आया ? प्रत्येक शब्द में गंभीरता है। टीकाकार ने... गाथा में व्यवहार को

अभूतार्थ कहा गाथा में, उसकी टीका की प्रभु अमृतचन्द्राचार्य ने... उसकी सरल भाषा में समझाने को यह पंडितजी अर्थ करते हैं, जयचन्द पंडितजी। आहाहा ! गृहस्थाश्रम में रहते थे। यहाँ तो आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ, यह गृहस्थाश्रम में हों तब भी मोक्षमार्गी है और साधु होकर पंचमहाव्रत पाले, हजारों रानी छोड़े, नग्न होकर जंगल में रहे, परंतु जिसने रागभाव का कण मात्र भी आदरणीय माना है, यह संसारमार्गी है। आहाहाहाहा !

क्योंकि राग स्वयं संसार है, शुभ राग है यह संसार है, शुभराग है दया, दान का यह भव है, यह संसार है, यह भव है, भव का जिसे प्रेम है वह भव-समुद्र में भटकनेवाला संसारी प्राणी है। आहाहाहा !

हजारों रानी छोड़कर मुनि हुआ हो, नग्नरूप धारण किया हो, जंगल में रहता हो, परंतु जो अंतर में महाव्रत आदि के परिणाम का जो राग उत्पन्न होता है, उस राग को स्वयं आदरणीय मानता है। आहाहा ! जिसका विषय ही व्यवहार का राग है, वही मानता है और यह राग का एकत्वपना जिसने माना है वह संसारमार्गी है और छियानवे करोड़ पैदल और छियानवे हजार स्त्रियों के बीच में हो चक्रवर्ती, परंतु अभेद चिदानंद आत्मा का अनुभव है। आहाहा ! यह मोक्ष के मार्ग में है, वह संसार के मार्ग पर है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह लोग तो सर्व व्यापक 'एक', यहाँ वजन 'एक' (पर) है वस्तु अपेक्षा सर्व व्यापक एक, गुण अपेक्षा गुणों का भेद नहीं अभेद, पर्याय अपेक्षा अवस्था नहीं और नित्य - ऐसे शुद्धब्रह्म को वस्तु कहते हैं। एक गुणभेद रहित, पर्याय रहित, शुद्धब्रह्म को वस्तु कहते हैं - ऐसा सिद्ध हो।

जो भेद और पर्याय न हो तब वेदांत मतवालों जैसी मिथ्यात्व की दृष्टि सिद्ध हो। आहाहा ! व्यवहार का विषय भेद पर्याय एवं राग है - ऐसा मानना चाहिए, मानना तो चाहिए। परंतु यह मान्यता छोड़ने लायक है। आहाहाहा ! और अखण्ड अभेद चैतन्यवस्तु उसका ज्ञान करके प्रतीति करना - यह उपादेय है। यही आदरणीय है और यह साम्यभाव स्वरूप भगवान... उसमें से प्रगट हुआ साम्यभाव यह आनंदमय है। वह मोक्ष के मार्ग में है। आहाहाा ! समझ में आया ? ऐसी बातें है।

और इससे सर्वथा, एकांत शुद्धनय का पक्षरूप सर्वथा, अर्थात कि निश्चय एक अभेद ही है और भेद पर्याय नहीं तब सर्वथा एकांत हो जाता है। कथंचित इस प्रकार कहते हो कि त्रिकाली की अपेक्षा नित्य है, पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। गुण-गुणी के भेद बिना की अपेक्षा से अभेद है, परंतु गुण-गुणी के भेद का भिन्न विचार करे तो भेद भी है। तब तो कथंचित नित्य और कथंचित अनित्य तब तो

कथंचित ध्रुव और कथंचित पर्याय - ऐसा सिद्ध हो... परंतु यह सर्वथा एकांत शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का प्रसंग आये। आहाहाहा !

जो व्यवहार का विषय भेद, पर्याय, राग है, अनेकपना भी है, एक में अनेक गुण भी है। ऐसे अनेक गुणों को न माने, पर्याय को न माने, भेद को नहीं माने तब वेदांत मत की भाँति मिथ्यादृष्टि का प्रसंग आता है। आहाहा ! यह तो वीताराग सर्वज्ञ केवली परमात्मा ने देखा है - वह मार्ग है। उसमें कोई सर्वज्ञ नहीं कि उन्होंने देखा (हो) क्या है ? यह तो कल्पना से सभी बातें नई खड़ी की है। आहाहा ! वेदांतमतवालोंने।

अभी वेदांत का बहुत पक्ष है, बड़े बड़े अधिकारी सरकारी ऑफिसर एवं सभी बड़े यह वेदांत (के) पक्ष में है। मुसलमान में भी यह एकपक्ष है - ऐसा कल कहा था। एक सूफी पक्ष है। इनके फकीर `अनहलहक' एक खुदा है - ऐसा माननेवाले फकीर को देखा है हमने। एकबार बोटाद में आहार लेने बाहर निकले थे तभी दो फकीर खड़े थे। वैसे तो... बिचारे एक तरफ हो गये थे उदास! उदास फकीर था। फिर हमने पूँछा कि यह है कौन ? मुसलमान यह सूफी फकीर कहलाते है।

कहते हैं कि `अनहलहक'। एक ही खुदा माननेवाले है - ऐसा माननेवाले, जिस प्रकार वह एक आत्मा माननेवाले है इसीप्रकार यह एक खुदा। अनहलहक-अनहलहक। उनमें एक मंसूर था वह अनहलहक एक ही खुदा है - ऐसा माननेवाला था दुनियाँ ने विरोध करके फाँसी पर चढ़ाया। फांसी पर चढ़ाया तो तब भी बोला कि `अनहलहक' खुदा एक है, आता है उनमें, बहुत अधिक सुना है शुरु से, बहुत देखा दुकान ऊपर हम थे, वहाँ हमारे वेदांती बहुत ग्राहक आते थे। ब्राह्मण था एक बड़ा वेदांती वह तो हमारा ग्राहक था। यह बाहर आये तो पैर छुये बहुत लोग... पालेज के पास गांव है। यह सभी उस समय जाना था, परंतु सभी एक और एक वह समझ बिना की बातें।

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर... आहाहा ! अनंत आत्मा देखे, एक एक आत्मा में अनंत गुण देखे एक एक आत्मामें एक समय की अनंती पर्याय देखीं। आहाहाहा !

अतः यहाँ - ऐसा समझना... यह पहले जहाँ कहा था न ! भावार्थ ? `यहाँ' - ऐसा कहा था न। यहाँ- ऐसा क्यों कहा ? कि इस जगह जो व्यवहार को असत् कहा है, इसका अर्थ क्या है ? दूसरी जगह व्यवहार को सत् कहा है। अर्थात `यहाँ' शब्दका प्रयोग किया है। इस जगह व्यवहार को असत्य कहा है और निश्चय को सत्य कहा, इसका आशय क्या है ? वह समझाओ अब यह लेते हैं।

इसलिये यहाँ, देखो ! पुनः लिया (है)। यहाँ - ऐसा समझना कि इस जगह

जो व्यवहार को असत्य कहा और त्रिकाल को सत्यार्थ कहकर वह `है' - ऐसा कहा यहाँ, आहा...हा..! इन भाई ने प्रश्न किया था रात को भाई ने `व्यवहारोऽभूयत्थो' दूसरी ***जगह कहीं है ? हाँ कहा था न पद्मनंदीपंचविंशतिका में है न उसमें है। निश्चय अधिकार में है व्यवहार अभूतार्थ है परंतु वहाँ यह लिया है उन्होंने `ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्दणओ... भूदत्थमस्सिदोखलु'... यति संत मुक्ति को पाते। यति लिया वहाँ यहाँ सम्यग्दृष्टि लिया है।***

(श्रोता :- वहाँ व्यवहार को व्यवहार से पूज्य कहा है) वह बाद में कहा व्यवहार पूज्य है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। बिलकुल व्यवहार से व्यवहार पूज्य न हो तब तो फिर देव-गुरु-शास्त्र को वन्दना यह कुछ रहे ही नहीं। अतः व्यवहार व्यवहार से पूज्य है। व्यवहार में तो जिनवाणी पूज्य है यह नहीं आया ? दूसरे श्लोक में। आहाहा ! यहाँ - ऐसा समझना कि यहाँ जो व्यवहार की असत्य कहा है और निश्चय को सत्य कहा है, अतः यहाँ - ऐसा समझना कि जिनवाणी स्यादवादरूप है। स्याद अर्थात अपेक्षा से कहनेवाली है। अपेक्षा से, किस अपेक्षा है यह, अपेक्षा से कहनेवाली है। आहाहा ! त्रिकाल को नित्य माने कहे, पर्याय को अनित्य कहे, आहाहा ! गुणभेद और पर्याय को व्यवहार का विषय कहे त्रिकाली को निश्चय का विषय कहे, यह स्याद् कथंचित इस प्रकार कहने में आया है।

और इसका अर्थ प्रयोजनवश अर्थात ? कि आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन होता है और आत्मा को आनंद की प्राप्ति हो, ऐसे प्रयोजन के कारण... आहा...! प्रयोजन तो सुख का है, तब यह आनंद का प्रयोजन सिद्ध कैसे हो ? आनंद का प्रयोजन प्रगट कैसे हो ? कि इस `प्रयोजन के वश' आनंद को प्राप्त करने के हेतु से, `नयों को मुख्य गौण करके कहते हैं'। यहाँ निश्चय को... मुख्य को निश्चय कहकर सत्य है - ऐसा कहा। आहाहा ! ***त्रिकाल भूतार्थ वस्तु है वही मुख्य है, और उसे निश्चय... निश्चय तो तीनों द्रव्य-गुण-पर्याय निश्चय है क्योंकि स्व है अतः निश्चय (है) (एवं) पर हो अतः व्यवहार।***

परंतु यहाँ इससे अन्य बात लेना है। यहाँ तो मुख्य जो चीज त्रिकाली है उसे निश्चय कहकर `वह ही है' - ऐसा कहकर, उसे मुख्यरूप से सिद्ध किया है और पर्याय को गुणभेद को गौण करके `है फिर भी' गौण करके वह नहीं - ऐसा कहने में आया है। अभाव करके नहीं, यहाँ - ऐसा नहीं। यहाँ असत्यार्थ कहा परंतु इसका अर्थ - ऐसा नहीं। कि `नहीं ही' - ऐसा नहीं, गौण करके `नहीं' व्यवहार का विषय और व्यवहार इसप्रकार कहा है।

अरे ! - ऐसा एक एक बात (को समझने की) किसको फुरसत है ? एक

तो संसार में पाप के धंधे में पूरे दिन यह कमाना और भोग एवं विषय तथा पैसा दुकान संभालना। एवं यह डॉक्टरी तथा वकालात ... अकेला पाप का धंधा सारे दिन अब इसमें धरम तो कहाँ रहा ? पुण्य भी कहाँ रहा। आहाहा ! पुण्य तो चार-पांच घण्टे सत् समागम करे ! सत् समागम किसे कहना ? इसे पहचाने और इसका समागम करे वांचन दो-चार-पांच घण्टे करे तब पुण्य भी हो। आहाहा ! धरम तो फिर (होगा)।

श्रोता :- धरम तो बहुत कठिन कर दिया है।

उत्तर :- वस्तु ऐसी है बापू !

श्रोता :- गरीबों को पैसा दें अतः पुण्य हो।

उत्तर :- धूल में नहीं। करोड़ों दे न ! विशेष तो - ऐसा है कि यह करोड़ हमने दिये, अपने मान कर दिये है - ऐसा मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का सेवन करता है। कहो महान पाखण्ड (का) सेवन करता है। पैसा जड़ है, अजीव, भगवान आत्मा जीव, वह अजीव हमारा है - ऐसा मान कर दे तो वह मिथ्यात्व का सेवन करता है। चाहे अंदर राग की मंदता का कोई भाव हो, तब मिथ्यात्व सहित उसे पापानुबंधी पुण्य का बंध हो। आहाहा ! - ऐसा है।

(श्रोता :- पैसा किसी का नहीं और मैं देता हूँ) देता हूँ - ऐसा कहा न ? दे कहाँ सकता है यह ? पर वस्तु को ले सके कि छोड़ सके यह आत्मा में है कहाँ ? इसमें गुण तो (है) त्यागउपादानशून्यत्वशक्ति, इसका गुण तो - ऐसा है प्रभु का, चैतन्य का, कि पर का त्याग एवं पर का ग्रहण, इससे तो रहित इसका स्वभाव है। पर का त्याग करुं कि ग्रहण करुं यह स्वरूप में नहीं। आहाहा ! - ऐसा है। दुनियाँ से तो विरुद्ध है भाई !

(श्रोता :- तब गुरुदेव जब पैसा हमारा नहीं तो किस प्रकार दे सके, मैं दे सकता नहीं। मैं ले सकता नहीं तो यह व्यवहार किस प्रकार चले ?) कौन कहता है ? यह विकल्प आया यह व्यवहार (है) यह भी हेय है, यह तो अलग जाति की बातें है बापा ! आहाहा ! तीनलोक के नाथ, वीतरागपरमात्मा, आहाहा ! अकषायी करुणा से परमात्मा, जगत को कहते हैं। अकषायी करुणा हाँ ! है ! आहाहा ! भगवंत ! सुनो तुम्हारे घर की बात प्रभु ! आहाहाहा ! तुम्हारी प्रभुता पूर्ण है उसे देखनेवाली नय को सत्य कहते हैं। क्योकि सच्चा पूर्ण सत्य साहेब विद्यमान है, आहा ! और भेद को और पर्याय को, दया, दान के विकल्प को जो नय जानता है, उस नय को हम झूठा कहते हैं, गौण करके झूठा कहते हैं। इसे मुख्य करके सत्य कहते हैं। आहाहाहाहाहा !

अपना तो यह आ गया है। यह सभी भी, इन लोगों के लिये रामजीभाई कहते हैं... (श्रोता :- हमारे लिये है) हाँ ? तुम्हारे लिये ! आहाहा ! यह तो विषय अलौकिक है बापा ! आहा ! अतीन्द्रिय आनंदादि अनंतगुणों का एकरूप - ऐसा जो नित्यद्रव्य वह जिसका विषय है दर्शन का, अथवा शुद्धनय का आहाहा ! उसे यहाँ सत्य कहकर भूतार्थ वह ही विद्यमान पदार्थ है और भेद और पर्याय को अविद्यमान कहकर नहीं कहकर, झूठी है - ऐसा कहा है। आहाहा ! इसका आशय यह कि अभेद में दृष्टि करने पर भेद दिखता नहीं। अतः भेद को अविद्यमान कहा जाता है। आहाहाहा !

प्रयोजनवश सुख और शांति की प्राप्ति हेतु से, आहाहाहा ! सुख और शान्ति की प्राप्ति के हेतु से, अतीन्द्रिय सुख प्राप्ति के वश, प्रयोजन वश, प्रयोजन जीव को सुख का है। इस प्रयोजन के वश, जिससे आनंद प्राप्त हो - ऐसा त्रिकाली भूतार्थ को सत्य कहा और जिसके आश्रय से आनंद न हो परंतु दुःख हो ऐसे भेद और पर्याय को व्यवहार गिन कर असत्य, गौण करके असत्य कहा। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा है। पोंना घण्टा तो हो गया। वैसे तो याद कितना रहे इसमें से ?

अब, कहते हैं प्रयोजनवश नय को मुख्य गौण करके कहते हैं, `यहाँ'। यहाँ हो यहाँ! अब - ऐसा क्यों कहा ? कि प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि से है। आहाहाहा ! गुण भेद, पर्याय की दृष्टि, पर्याय ऊपर दृष्टि, ***भले यह एक समय की पर्याय को देख सकते नहीं, कारण एक समय की पर्याय को देखने जाय तो उपयोग बहुत सूक्ष्म हो जाये, परंतु उसकी दृष्टि में द्रव्यस्वभाव नहीं, इसलिये उसकी दृष्टि में पर्याय है - ऐसा कहा जाता है।*** समझ में आया ? आहाहाहा !

वैसे तो एक समय में अनंती पर्याय हैं अनंत गुणों की, परंतु इन अनंतगुण की अनंती पर्याय की मर्यादा एक समय की, अब एक समय की मर्यादा की पर्याय दृष्टि करने जाय तो, एक समय पकड़ में आये तो तब उपयोग हो गया शुद्ध। परंतु उसकी दृष्टि का विषय जो त्रिकाली है यह नहीं, इसलिये उसकी दृष्टि भेद एवं पर्याय ऊपर है, अतः पर्याय दृष्टिवाला कहा जाता है। आहाहाहाहा !

प्राणियों को... यहाँ प्राणियों शब्द बहुवचन लिया। बहुत से प्राणियों को तो, भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादि काल से ही है यह तो। आहाहाहा ! एक बात, भेदरूप व्यवहार का पक्ष, आश्रय अवलंबन यह ही है - ऐसा पक्ष तो अनादि का है और उसका उपदेश भी बहुधा उपदेश भी - ऐसा क्यों कहा ? कि एक तो वह और दूसरा यह। प्रथम तो इसे भेदरूप व्यवहार का अनादि का पक्ष है एक, और उसका उपदेश भी, दूसरा `परन्तु' शब्द में लेना दूसरा। दूसरा बोल यह भी है इसके साथ,

यह बहुधा सर्व प्राणियों बहुधा सर्व प्राणियों आत्मायें परस्पर उपदेश करते है, यही करते हैं। दान करना, व्रत करना, व्यवहार करना, तप करना, पूजा करना यह कहनेवाले कहते हैं न सुननेवाले खुश होते हैं। परस्पर व्यवहार का उपदेश करनेवाले बहुधा ऐसे है, कहो समझ में आया ?

वह कहनेवाले कहते कि, निश्चय, निश्चय की बातें करें परंतु व्यवहार बिना निश्चय होता है ? - ऐसा कहकर व्यवहार व्रत तप करो दया करो, सेवा करो, अनाथाश्रम बनाओ, भूखों को आहार दो, प्यासे को पानी दो, रोगी को औषधि दो, रहनेवालों को स्थान दो - ऐसा उपदेश अज्ञानीयों करते है, और सुननेवाले उसे पसंद करते हैं। आहाहा !

पहला बोल यह लिया कि भेद का पक्ष अनादि का है और उसे उपदेशक भी सब ऐसे ही मिलते हैं। आहाहाहाहा !

उपदेश भी बहुधा... बहुधा, सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। एक दूसरे को यही बातें की पुष्टी करते है बस, आहाहा ! सेवा करना चाहिए, दुःखियों की, दुःखी प्राणी है उसे देखकर अनुकंपा नहीं आये ? और अनुकंपा आये तो उसे आहारपानी देने का भाव न हो ? अतः करना ही चाहिए। (श्रोता :- पर (की) सेवा तो गहन विषय है) धूल में नहीं, पर सेवा अर्थात आत्मा की सेवा। पर अर्थात प्रधान - ऐसा भगवान आत्मा उसकी सेवा, पर अर्थात यह (अन्य) नहीं। आहाहा !

यह यह (स्वयं) इसी का ही अर्थ किया। पूर्णानंद के नाथ की सेवा स एव, सेवा अर्थात स एव, से...वा, स एव। त्रिकाली यही वह आत्मा पूर्णानंद उसकी प्रतीति और सेवा दुर्लभ है। यहाँ तो सभी विषय में फर्क है।

- ऐसा है वस्तु स्वरूप - ऐसा है। (श्रोता :- यह आत्मा ही सेवा योग्य (है)) हाँ... अरे ! अंगुली को हिला सकता नहीं न प्रभु। देखो न यह तो जड है, यह हिलता है यह अपने कारण, यह (अंगुली तो) जड़ है। आत्मा इसको हिला सके - ऐसा मानना यह मिथ्यात्व भ्रम है, अज्ञान है और यह दूसरों को दवा दे और आहार दें न ?

(श्रोता :- डॉक्टर मरीज को नली (बोतल) लगाये कि नहीं ? नाड़ी देखे कि नहीं ?) कौन देखता है ? उसे विकल्प आये मात्र, यह क्रिया तो जड़ की है। दुनियाँ से अलग जाति है बापा ! वीतराग का मार्ग। आहाहा ! परमेश्वर त्रिलोकनाथ। आहाहा ! सर्वज्ञ-साक्षात् विराजते हैं। प्रभु ! महाविदेह (में) सीमंधर भगवान तो विराजते हैं, महाविदेह में। आहाहा ! यह सभी उनकी वाणी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे वहाँ से लाये, यह उनकी वाणी हैं। आहाहा ! भगवान का यह संदेश है प्रभु ! आहाहा ! अपनी

पूर्ण प्रभुता को सम्हाल ! प्रभु इसमें तुम्हें आनंद आयेगा... तुम पर्याय और राग की पर को सम्हाल करने जाओगे प्रभु तुम्हें दुःख होगा, राग होगा, दुःख होगा। आहाहा ! - ऐसा प्रभु का कहना है। तीनलोक के नाथ की यह आज्ञा और हुकुम है। प्रभु ! तुम्हें सुख का प्रयोजन है, तब सुख का प्रयोजन तो प्रभु, जिसमें सुख है उसमें दृष्टि दो तो सुख होगा। यह सुख इसमें है ? पर की सेवा में सुख मानता है वह तो राग है, राग है वह दुःख है। आहाहा ! कठिन काम है बापू !

देखा ! बहुधा प्राणी परस्पर करते है ? परस्पर करते हैं। कहनेवाले भी संख्या में बहुत सुननेवाले संख्या में बहुत। प्राणभाई ! यह प्राण है हो। वह प्राण (दस प्राण) तो सभी खोटे है यह सभी। आहाहा ! चैतन्य के भाव प्राण आनंद के प्रभु। उसे सत्य कहकर वही है - ऐसा सिद्ध किया और पर्याय रागादिक `है' फिर भी, उसे असत्य कह कर झूठा कहकर गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा। उसका हेतु यह कि सुख का प्रयोजन तुम्हें हो तो तुम्हें द्रव्य ऊपर दृष्टि देनी पड़ेगी, अभेद ऊपर दृष्टि देनेपर तुम्हें सुख प्रगटेगा। भेद और पर्याय ऊपर दृष्टि देने पर प्रभु तुम्हें राग होगा, तुम्हें दुःख होगा तुम दुःख की आकुलता का वेदन करोगे प्रभु। आहाहा !

दो हुये। अब `जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलंबन जान कर बहुत किया है' आहाहाहा ! क्योंकि निश्चय स्वरूप जो भगवानआत्मा का दर्शन ज्ञान होता है, चारित्र (होता) है, उसके साथ व्यवहार होता है दया और दान एवं व्रत का - ऐसा व्यवहार होता है उसका उपदेश, व्यवहार का भी भगवान ने बहुत किया है। आहाहा ! समझ में आया ?

सम्यक्त्व के आठ अंग, ज्ञान के आठ अंग, चारित्र के आठ अंग व्यवहार इन सभी का वर्णन भगवानने किया है। - ऐसा कहा है। समझ में आया ?

परंतु... यह जिनवाणी में जो उपदेश इस व्यवहार का आया... आहाहाहाहा ! हस्तावलंबन का अर्थ निमित्त लेना सहाय का अर्थ भी साथ में है - ऐसा लेना, निश्चय के साथ - ऐसा विकल्प राग का होता है - ऐसा निमित्त अपेक्षा सहचररूप में जानकर - ऐसा उपदेश वीतराग की आज्ञा में व्यवहार आज्ञा में आया है। परंतु इसका फल संसार है।

(श्रोता :- उपदेश में साधन-साध्य कहा) यह साधन साध्य कहा। परंतु निमित्त रूप साधन का ज्ञान कराया है। साधन तो एक ही है। यही कहा यह, जो विकल्प साधन होता है, उसका ज्ञान कराने के लिए, उसने व्यवहार का उपदेश स्थापा, परंतु है इसका फल संसार। आहा...हा..!

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)